

## अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

कोई भी धर्मप्रवर्तक अपने शासनको स्थायी और व्यापक रूप देनेके लिये मनुष्य-समाजके सामने दो बातोंको पेश करता है—एक तो धर्मका उद्देश्य-रूप और दूसरा उसका विधेय-रूप। दूसरे शब्दोंमें धर्मके उद्देश्य-रूपको साध्य, कार्य या सिद्धान्त कह सकते हैं और उसके विधेय-रूपको साधन, कारण या आचरण कह सकते हैं। वीरशासनके पारिभाषिक शब्दोंमें धर्मके इन दोनों रूपोंको क्रमसे निश्चयधर्म और व्यवहारधर्म कहा गया है। प्राणिमात्रके लिये आत्मकल्याणमें यही निश्चय-धर्म उद्दिष्ट वस्तु है और व्यवहारधर्म है इस निश्चय-धर्मकी प्राप्तिके लिये उसका कर्तव्यमार्ग।

इन दोनों बातोंको जो धर्मप्रवर्तक जितना सरल, स्पष्ट और व्यवस्थित रीतिसे रखनेका प्रयत्न करता है उसका शासन संसारमें सबसे अधिक महत्त्वशाली समझा जा सकता है। इतना ही नहीं, वह सबसे अधिक प्राणियोंको हितकर हो सकता है। इसलिये प्रत्येक धर्मप्रवर्तकका लक्ष्य दार्शनिक सिद्धान्तकी ओर दौड़ता है। वीरभगवान्का ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने दार्शनिक तत्त्वोंको व्यवस्थित रूपसे उनकी तथ्यपूर्ण स्थिति तक पहुँचानेके लिये दर्शनशास्त्रके आधारस्तम्भ रूप अनेकान्तवाद और स्याद्वाद इन दो तत्त्वोंका आविर्भाव किया।

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद ये दोनों दर्शनशास्त्रके लिये महान् गढ़ हैं। जैनदर्शन इन्हींकी सीमामें विचरता हुआ संसारके समस्त दर्शनोंके लिये आज तक अजेय बना हुआ है। दूसरे दर्शन जैनदर्शनको जीतनेका प्रयास करते तो हैं परन्तु इन दुर्गोंके देखने मात्रसे उनको निःशक्त होकर बैठ जाना पड़ता है—किसीके भी पास इनके तोड़नेके साधन मौजूद नहीं हैं।

जहाँ अनेकान्तवाद और स्याद्वादका इतना महत्त्व बढ़ा हुआ है वहाँ यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि साधारणजनकी तो बात ही क्या? अजैन विद्वानोंके साथ-साथ प्रायः जैन विद्वान् भी इनका विश्लेषण करनेमें असमर्थ हैं।

अनेकान्त और स्यात् ये दोनों शब्द एकार्थक हैं या भिन्नार्थक? अनेकान्तवाद और स्याद्वादका स्वतन्त्र स्वरूप क्या है? अनेकान्तवाद और स्याद्वाद दोनोंका प्रयोगस्थल एक है या स्वतन्त्र? आदि समस्याएँ आज हमारे सामने उपस्थित हैं।

यद्यपि इन समस्याओंका हमारी व दर्शनशास्त्रकी उन्नति या अवनतिसे प्रत्यक्षरूपमें कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु अप्रत्यक्षरूपमें ये हानिकर अवश्य हैं। क्योंकि जिस प्रकार एक ग्रामीण कवि छंद, अलंकार, रस, रीति आदिका शास्त्रीय परिज्ञान न करके भी छंद, अलंकार आदिसे सुसज्जित अपनी भावपूर्ण कवितासे जगतको प्रभावित करनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार सर्वसाधारण लोग अनेकान्तवाद और स्याद्वादके शास्त्रीय परिज्ञानसे शून्य होनेपर भी परस्परविरोधी जीवनसंबन्धी समस्याओंका इन्हीं दोनों तत्त्वोंके बलपर अविरोध रूपसे समन्वय करते हुए अपने जीवन-संबन्धी व्यवहारोंको यद्यपि व्यवस्थित बना लेते हैं परन्तु फिर भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके जीवनसंबन्धी व्यवहारोंमें परस्पर विरोधीपन होनेके कारण जो लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं वे सब अनेकान्तवाद और स्याद्वादके रूपको न समझनेके ही परिणाम हैं। इसी तरह अजैन दार्शनिक विद्वान् भी अनेकान्तवाद और स्याद्वादको दर्शनशास्त्रके अंग न मानकरके भी अपने सिद्धान्तोंमें उपस्थित हुई परस्पर विरोधी समस्याओंको इन्हींके बलपर हल करते हुए यद्यपि दार्शनिक तत्त्वोंकी व्यवस्था करनेमें समर्थ होते हुए नजर आ रहे हैं, तो भी भिन्न-भिन्न दार्शनिकोंके सिद्धान्तोंमें परस्पर विरोधीपन होनेके कारण उनके द्वारा

अपने सिद्धान्तोंको सत्य और महत्त्वशाली तथा दूसरेके सिद्धान्तको असत्य और महत्त्वरहित सिद्ध करनेकी जो असफल चेष्टा की जाती है वह भी अनेकान्तवाद और स्याद्वादके स्वरूपको न समझनेका ही फल है।

सारांश यह कि लोकमें एक दूसरेके प्रति जो विरोधी भावनाएँ तथा धर्मोंमें जो साम्प्रदायिकता आज दिखाई दे रही है उसका कारण अनेकान्तवाद और स्याद्वादको न समझना ही कहा जा सकता है।

जैनी लोग यद्यपि अनेकान्तवादी और स्याद्वादी कहे जाते हैं और वे खुद भी अपनेको ऐसा कहते हैं, फिर भी उनके मौजूदा प्रचलित धर्मोंमें जो साम्प्रदायिकता और उनके हृदयोंमें दूसरोंके प्रति जो विरोधी भावनाएँ पाई जाती हैं उसके दो कारण हैं—एक तो यह कि उनमें भी अपने धर्मको सर्वथा सत्य और महत्त्वशील तथा दूसरे धर्मोंको सर्वथा असत्य और महत्त्वरहित समझनेकी अहंकारवृत्ति पैदा हो जानेसे उन्होंने अनेकान्तवाद और स्याद्वादके क्षेत्रको बिलकुल संकुचित बना डाला है, और दूसरे यह कि अनेकान्तवाद और स्याद्वादकी व्यावहारिक उपयोगिताको वे भी भूले हुए हैं।

### अनेकान्त और स्यात्का अर्थभेद

बहुतसे विद्वान् इन दोनों शब्दोंका एक अर्थ स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि अनेकान्तरूप-पदार्थ ही स्यात् शब्दका वाच्य है और इसीलिये वे अनेकान्त और स्याद्वादमें वाच्य-वाचक सम्बन्ध स्थापित करते हैं—उनके मतसे अनेकान्त वाच्य है और स्याद्वाद उसका वाचक है। परन्तु “वाक्येष्वनेकान्तद्योती” इत्यादि कारिकामें पड़े हुए “द्योती” शब्दके द्वारा स्वामी समन्तभद्र स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि ‘स्यात्’ शब्द अनेकान्तका द्योतक है, वाचक नहीं।

यद्यपि कुछ शास्त्रकारोंने भी कहीं-कहीं स्यात् शब्दको अनेकान्त अर्थका बोधक स्वीकार किया है, परन्तु वह अर्थ व्यवहारोपयोगी नहीं मालूम पड़ता है—केवल स्यात् शब्दका अनेकान्तरूप रूढ़ अर्थ मानकरके इन दोनों शब्दोंकी समानार्थकता सिद्ध की गई है। यद्यपि रूढ़िसे शब्दोंके अनेक अर्थ हुआ करते हैं और वे असंगत भी नहीं कहे जाते हैं फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि स्यात् शब्दका अनेकान्तरूप अर्थ प्रसिद्धार्थ नहीं है। जिस शब्दसे जिस अर्थका सीधे तौरपर जल्दीसे बोध हो सके वह उस शब्दका प्रसिद्ध अर्थ माना जाता है और वही प्रायः व्यवहारोपयोगी हुआ करता है; जैसे ‘गो’ शब्द पशु, भूमि, वाणी आदि अनेक अर्थोंमें रूढ़ है परन्तु उसका प्रसिद्ध अर्थ पशु ही है, इसलिये वही व्यवहारोपयोगी माना जाता है। और तो क्या? हिन्दीमें गौ या गाय शब्द जो कि गो शब्दके अपभ्रंश है केवल स्त्री गो में ही व्यवहृत होते हैं, पुरुष गो अर्थात् बैल रूप अर्थमें नहीं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे बैल रूप अर्थके वाचक ही नहीं हैं किन्तु बैल रूप अर्थ उनका प्रसिद्ध अर्थ नहीं, ऐसा ही समझना चाहिये। स्यात् शब्द उच्चारणके साथ-साथ कथंचित् अर्थकी ओर संकेत करता है अनेकान्तरूप अर्थकी ओर नहीं, इसलिये कथंचित् शब्दका अर्थ ही स्यात् शब्दका अर्थ अथवा प्रसिद्ध अर्थ समझना चाहिये।

### अनेकान्तवाद और स्याद्वादका स्वरूप

अनेकान्तवाद शब्दके तीन शब्दांश हैं—अनेक, अन्त और वाद। इसलिये अनेक—नाना, अन्त—वस्तु-धर्मोंकी, वाद—मान्यताका नाम ‘अनेकान्तवाद’ है। एक वस्तुमें नानाधर्मों (स्वभावों) को प्रायः सभी दर्शन स्वीकार करते हैं, जिससे अनेकान्तवादकी कोई विशेषता नहीं रह जाती है और इसलिये उन धर्मोंका क्वचित् विरोधीपन भी अनायास सिद्ध हो जाता है, तब एक वस्तुमें परस्पर विरोधी और अविरोधी नाना धर्मोंकी मान्यताका नाम अनेकान्तवाद समझना चाहिये। यही अनेकान्तवादको अविकलस्वरूप कहा जा सकता है।

स्याद्वाद शब्दके दो शब्दांश हैं—स्यात् और वाद । ऊपर लिखे अनुसार स्यात् और कथंचित् ये दोनों शब्द एक अर्थके बोधक हैं—कथंचित् शब्दका अर्थ है “किसी प्रकार” । यही अर्थ स्यात् शब्दका समझना चाहिये । वाद शब्दका अर्थ है मान्यता । “किसी प्रकारसे अर्थात् एकदृष्टिसे—एक अपेक्षासे या एक अभिप्रायसे”, इस प्रकारकी मान्यताका नाम स्याद्वाद है । तात्पर्य यह कि विरोधी और अविरोधी नानाधर्मवाली वस्तुमें अमुक धर्म अमुक दृष्टिसे या अमुक अपेक्षा या अमुक अभिप्रायसे है तथा व्यवहारमें “अमुक कथन, अमुक विचार, या अमुक कार्य, अमुक दृष्टि, अमुक अपेक्षा, या अमुक अभिप्रायको लिये हुए है” । इस प्रकार वस्तुके किसी भी धर्म तथा व्यवहारकी सामंजस्यताकी सिद्धिके लिये उसके दृष्टिकोण या अपेक्षाका ध्यान रखना ही स्याद्वादका स्वरूप माना जा सकता है ।

### अनेकान्त और स्याद्वादके प्रयोगका स्थलभेद

(१) इन दोनोंके उल्लिखित स्वरूपपर ध्यान देनेसे मालूम पड़ता है कि जहाँ अनेकान्तवाद हमारी बुद्धिको वस्तुके समस्त धर्मोंकी ओर समानरूपसे खींचता है वहाँ स्याद्वाद वस्तुके एक धर्मका ही प्रधानरूपसे बोध करानेमें समर्थ है ।

(२) अनेकान्तवाद एक वस्तुमें परस्पर विरोधी और अविरोधी धर्मोंका विधाता है—वह वस्तुको नाना धर्मात्मक बतलाकर ही चरितार्थ हो जाता है । स्याद्वाद उस वस्तुको उन नाना धर्मोंके दृष्टिभेदोंके बतलाकर हमारे व्यवहारमें आने योग्य बना देता है—अर्थात् वह नानाधर्मात्मक वस्तु हमारे लिये किस हालतमें किस तरह उपयोगी हो सकती है, यह बात स्याद्वाद बतलाता है । थोड़ेसे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि अनेकान्तवादका फल विधानात्मक है और स्याद्वादका फल उपयोगात्मक है ।

(३) यह भी कहा जा सकता है कि अनेकान्तवादका फल स्याद्वाद है—अनेकान्तवादकी मान्यताने ही स्याद्वादकी मान्यताको जन्म दिया है, क्योंकि जहाँ नानाधर्मोंका विधान नहीं है वहाँ दृष्टिभेदकी कल्पना हो ही कैसे सकती है ?

उल्लिखित तीन कारणोंसे बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि अनेकान्तवाद और स्याद्वादका प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थलोंमें होना चाहिये । इस तरह यह बात भलीभांति सिद्ध हो जाती है कि अनेकान्तवाद और स्याद्वाद ये दोनों एक नहीं हैं; परन्तु परस्पर सापेक्ष अवश्य हैं । यदि अनेकान्तवादकी मान्यताके बिना स्याद्वादकी मान्यताके बिना स्याद्वादकी मान्यताकी कोई आवश्यकता नहीं है तो स्याद्वादकी मान्यताके बिना अनेकान्तवादकी मान्यता भी निरर्थक ही नहीं बल्कि असंगत ही सिद्ध होगी । हम वस्तुको नानाधर्मात्मक मान करके भी जबतक उन नानाधर्मोंका दृष्टिभेद नहीं समझेंगे तबतक उन धर्मोंकी मान्यता अनुपयोगी तो होगी ही, साथ ही वह मान्यता युक्ति-संगत भी नहीं कही जा सकेगी ।

जैसे लंघन रोगीके लिये उपयोगी भी है और अनुपयोगी भी, यह तो हुआ लंघनके विषयमें अनेकान्त-वाद । लेकिन किस रोगीके लिये वह उपयोगी है और किस रोगीके लिये वह अनुपयोगी है, इस दृष्टिभेदको बतलाने वाला यदि स्याद्वाद न माना गया तो यह मान्यता न केवल व्यर्थ ही होगी, बल्कि पित्तज्वरवाला रोगी लंघनकी सामान्यतौरपर उपयोगिता समझकर यदि लंघन करने लगेगा तो उसे उस लंघनके द्वारा हानि ही उठानी पड़ेगी । इसलिये अनेकान्तवादके द्वारा रोगीके सम्बन्धमें लंघनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता रूप दो धर्मोंको मान करके भी वह लंघन अमुक रोगीके लिये उपयोगी और अमुक रोगीके लिये अनुपयोगी है, इस दृष्टि-भेदको बतलाने वाला स्याद्वाद मानना ही पड़ेगा ।

एक बात और है, अनेकान्तवाद वक्तासे अधिक संबन्ध रखता है; क्योंकि वक्ताकी दृष्टि ही विधा-

नात्मक रहती है। इसी प्रकार स्याद्वाद श्रोतासे अधिक सम्बन्ध रखता है; क्योंकि उसकी दृष्टि हमेशा उपयोगात्मक रहा करती है। वक्ता अनेकान्तवादके द्वारा नानाधर्मविशिष्ट वस्तुका दिग्दर्शन कराता है और श्रोता स्याद्वादके जरियेसे उस वस्तुके केवल अपने लिये उपयोगी अंशको ग्रहण करता है।

इन कथनसे यह तात्पर्य नहीं लेना चाहिये कि वक्ता 'स्यात्' की मान्यताको और श्रोता 'अनेकान्त' की मान्यताको ध्यानमें नहीं रखता है। यदि वक्ता 'स्यात्'की मान्यताको ध्यानमें नहीं रखेगा तो वह एक वस्तुमें परस्पर विरोधी धर्मोंका समन्वय न कर सकनेके कारण उन विरोधी धर्मोंका उस वस्तुमें विधान ही कैसे करेगा? ऐसा करते समय विरोधरूपी सिपाही चोरकी तरह उसका पीछा करनेको हमेशा तैयार रहेगा। इसी तरह यदि श्रोता 'अनेकान्त'की मान्यताको ध्यानमें नहीं रखेगा तो वह दृष्टिभेद किस विषयमें करेगा? क्योंकि दृष्टिभेदका विषय अनेकान्त अर्थात् वस्तुके नानाधर्म ही तो हैं।

इसलिये ऊपरके कथनसे केवल इतना तात्पर्य लेना चाहिये कि वक्ताके लिये विधान प्रधान है—वह स्यात्की मान्यतापूर्वक अनेकान्तकी मान्यताको अपनाता है और श्रोताके लिये उपयोग प्रधान है—वह अनेकान्तकी मान्यतापूर्वक स्यात्की मान्यताको अपनाता है।

मान लिया जाय कि एक मनुष्य है, अनेकान्तवादके जरिये हम इस नतीजेपर पहुँचे कि वह मनुष्य वस्तुत्वके नाते नानाधर्मात्मक है—वह पिता है, पुत्र है, मामा है, भाई है आदि आदि बहुत कुछ है। हमने वक्ताकी हैसियतसे उसके इन सम्पूर्ण धर्मोंका निरूपण किया। स्याद्वादसे यह बात तय हुई कि वह पिता है स्यात्—किसी प्रकारसे—दृष्टिविशेषसे—अर्थात् अपने पुत्रकी अपेक्षा; वह पुत्र है, स्यात्—किसी प्रकार अर्थात् अपने पिताकी अपेक्षा; वह मामा है स्यात्—किसी प्रकार अर्थात् अपने भानजेकी अपेक्षा, वह भाई है स्यात्—किसी प्रकार—अर्थात् अपने भाईकी अपेक्षा।

अब यदि श्रोता लोगोंका उस मनुष्यसे इन दृष्टियोंमेंसे किसी भी दृष्टिसे सम्बन्ध है तो वे अपनी-अपनी दृष्टिसे अपने लिये उपयोगी धर्मको ग्रहण करते जावेंगे। पुत्र उसको पिता कहेगा, पिता उसको पुत्र कहेगा, भानजा उसको मामा कहेगा और भाई उसको भाई कहेगा; लेकिन अनेकान्तवादको ध्यानमें रखते हुए वे एक दूसरेके व्यवहारको असंगत नहीं ठहरावेंगे। अस्तु।

इस प्रकार अनेकान्तवाद और स्याद्वादके विश्लेषणका यह यथाशक्ति प्रयत्न है। आशा है इससे पाठकजन इन दोनोंके स्वरूपको समझनेमें सफल होनेके साथ साथ वीर-भगवान्के शासनकी गम्भीरताका सहज हीमें अनुभव करेंगे और इन दोनों तत्त्वोंके द्वारा सांप्रदायिकताके परदेको हटाकर विशुद्ध धर्मकी आराधना करते हुए अनेकान्तवाद और स्याद्वादके व्यावहारिक रूपको अपने जीवनमें उतारकर वीर-भगवान्के शासनकी अद्वितीय लोकोपकारिताको सिद्ध करनेमें समर्थ होंगे।

